भाऊ राम

बनाम

बी. बैजनाथ सिंह व अन्य

(पी.बी. गजेन्द्रगड़कर, ए.के. सरकार, के. सुब्बा

राव, के.एन. वांचू तथा जे.आर. मुधोलकर, जेजे.)

अपील - पोषणीयता - अग्र क्रयाधिकार के लिये डिक्री - अग्र क्रयाधिकार की राशि न्यायालय में जमा करवायी गयी - उक्त राशि प्रतिवादी द्वारा वापस ली गयी - क्या प्रतिवादी इसके उपरान्त डिक्री को चुनौती दे सकता है - अनुमोदन एवं प्रत्याख्यान - रीवा राज्य प्री-एम्पशन एक्ट, 1949

प्रत्यर्थी द्वारा अपीलार्थी के विरूद्घ प्रस्तुत अग्र क्रयाधिकार के अधिकार के प्रवर्तन का वाद विचारण न्यायालय द्वारा खारिज किया गया, परन्तु अपील में दिनांक 24.03.1952 को डिक्री पारित की गयी, जिसके तहत् प्रत्यर्थी द्वारा 4 माह के भीतर न्यायालय में खरीद धन के रूप में भुगतान करने पर, सम्पत्ति पर उसका अधिकार अदालत में भुगतान की तारीख से उपार्जित माना जावेगा। अपीलार्थी ने उच्चतम न्यायालय में अपील करने के लिये विशेष अनुमति के लिये आवेदन किया और दिनांक 20.05.1953 को अनुमति दी गयी, जिसमें अपील को संविधान के उस

बिन्दू तक सीमित कर दिया गया कि रीवा राज्य प्री-एम्पशन अधिनियम, 1949 इस आधार पर असंवैधानिक था कि उसने सम्पत्ति प्राप्त करने के अधिकार पर अनुचित प्रतिबन्ध लगा दिया था। अनुच्छेद 19(1)(च) में बतायी गयी सम्पत्ति प्राप्त करने के अधिकार पर अनुचित प्रतिबंध लगा दिया, इसी बीच प्रत्यर्थी ने डिक्री में निर्धारित समय के भीतर न्यायालय में अग्र क्रय की राशि जमा कर दी और 14 नवम्बर 1953 को अपीलार्थी ने न्यायालय से उक्त राशि वापस ले ली। उच्चतम न्यायालय में अपील नियत समय पर सुनवाई के लिये आयी और प्रत्यर्थी द्वारा उठायी गयी प्रारम्भिक आपत्ति पर प्रश्न उठा कि क्या अपीलार्थी को इस आधार पर अपील के साथ आगे बढ़ने से रोका गया था कि उसने अग्र क्रय का मूल्य प्राप्त कर डिक्री को स्वीकार कर लिया है और इसलिये उसे यह कहते हुए नहीं सुना जा सका कि उक्त डिक्री गलत थी। प्रत्यर्थी ने इस सिद्घान्त पर भरोसा किया कि किसी व्यक्ति को अनुमोदन और खण्डन करने की अनुमति नहीं दी जा सकती।

अभिनिर्धारित (सरकार, जे., असहमति व्यक्त करते हुए), कि अपीलार्थी का अग्र क्रय मूल्य वापस लेने का कार्य, डिक्री स्वीकार करने के समान नहीं था, जिस डिक्री को उसने अपनी अपील में विशेष रूप से चुनौती दी थी और कुछ वैधानिक प्रावधान या साम्या के अच्छी तरह से मान्यता प्राप्त सिद्घान्त के अभाव में, उसे उसकी अपील के वैधानिक

अधिकार से वंचित नहीं किया जा सकता था। तद्नुसार अपीलार्थी को अपील के साथ आगे बढ़ने से नहीं रोका गया था।

यह सिद्घान्त कि एक व्यक्ति जो एक आदेश के तहत् लाभ लेता है, उस आदेश के उस हिस्से को अस्वीकार नहीं कर सकता है, जो उसके लिये मानसिक रूप से हानिकारक है, इस आधार पर कि उसे अनुमोदन और खण्डन करने की अनुमति नहीं दी जा सकती, केवल उन मामलों में लागू होता है जहां

1 एस.सी.आर. सर्वोच्च न्यायालय रिपोर्टस् 359

आदेश द्वारा प्रदान किया गया लाभ, दावे के गुण-दोष से अलग है।

एक अग्र क्रयाधिकार के दावे में एक विक्रेता, जिसके खिलाफ डिक्री पारित हुई है, पारित डिक्री के प्रभावी होने से पूर्व अग्र क्रय का मूल्य भुगतान करने का अधिकार रखता है, परन्तु ऐसे मूल्य को डिक्री के तहत् लाभ के रूप में वर्णित किया जा सकता है, यह केवल विक्रेता को उसकी सम्पत्ति के नुकसान के लिये उस क्षतिपूर्ति की प्रकृति का हैं।

टिंकलर बनाम हिल्डर (1849) 4 एक्स-187: 154 ई.आर. 1176, वर्चुरेज क्रिमरीज बनाम हल और नीदरलैंड स्टीमशिप कम्पनी, (1921) 2 के.बी. 608, लिसेंडेन बनाम सी.ए.वी. बाॅश लिमिटेड, (1940) ए.सी. 412,

वेंकटरायुडू बनाम चिन्ना, ए.आई.आर. 1930 मद्रास 268 तथा सुंदर दास बनाम धनपत राय, 1907 पी.आर. नं. 16, पर विचार किया गया।

जे. सरकार के अनुसार - डिक्री एकल एवं अविभाज्य थी और अपीलार्थी को डिक्री को स्वतन्त्र रूप से धन का कोई अधिकार नहीं था और वह केवल इस आधार पर धन निकाल सकता था कि डिक्री उचित रूप से पारित की गयी थी। उसने राशि निकाल कर इसकी शुद्घता को अपनाया और अब यह नहीं कह सकते कि यह गलत है, अपील के अभियोजन के परिणामस्वरूप अपीलार्थी का आचरण असंगत हो जायेगा और उसे अपील के साथ आगे बढ़ने की अनुमति नहीं दी जा सकती हैं।

केस कानून की समीक्षा की गयी।

दीवानी अपीलीय क्षेत्राधिकारः दीवानी अपील सं. 270/1955

प्रथम अपील सं. 16/1958 न्यायिक आयुक्त न्यायालय, विंध्य प्रदेश के 24 मार्च 1952 के फैसले और डिक्री से विशेष अनुमति द्वारा अपील

अपीलार्थी की ओर से एल.के. झा, ए.डी. माथुर तथा आर. पटनायक ।प्रत्यर्थी सं.-1 की ओर से एन.सी. चटर्जी और डी.एन. मुखर्जी ।

16 मार्च 1961 - पी.बी. गजेन्द्र गड़कर, के. सुब्बा राव, के.एन. वांचू और जे.आर. मुधोलकर, जे.जे., का निर्णय मुधोलकर जे. द्वारा सुनाया गया, जे.ए.के. सरकार, जे., ने गलत निर्णय दिया।

मुधोलकर जे.- यह विशेष अनुमति द्वारा एक अपील है और इसमें शामिल मुख्य बिन्दू यह है कि क्या रीवा राज्य प्री-एम्पशन एक्ट 1949 इस आधार पर असंवैधानिक है

कि यह संविधान के अनुच्छेद 19(1)(च) में दिये गये सम्पत्ति अर्जित करने के अधिकार पर अनुचित प्रतिबंध लगाता है, परन्तु इससे पहले कि हम इस बिन्दू पर बहस सुने, इस बिन्दू पर वादी/प्रत्यर्थी सं.-1 की ओर से एन.सी. चटर्जी द्वारा उठायी गयी प्रारम्भिक आपत्ति का निपटारा करना आवश्यक है कि प्रतिवादी/प्रत्यर्थी अपील के साथ आगे बढ़ने से वर्जित है, क्योंकि उसे अपील करने के लिये विशेष अनुमति देने के बाद उसने अग्र क्रय का मूल्य वापस प्राप्त कर लिया है, जो प्रतिवादी सं.-1 द्वारा अधीनस्थ न्यायालय में जमा किया गया था। उसका तर्क है कि अग्र क्रय का मूल्य वापस लेने से अपीलार्थी ने उस डिक्री को स्वीकार कर लिया है, जो उसे केवल राशि का हकदार बनाती है और इसलिये उसे यह कहते हुए नहीं सुना जा सकता कि डिक्री गलत है। संक्षेप में, श्री चटर्जी इस सिद्घान्त पर निर्भर करते है कि किसी एक व्यक्ति को अनुमोदन और खण्डन करने की अनुमति नहीं दी जा सकती।

अपने तर्क के समर्थन में विद्वान अधिवक्ता ने जाने-माने केस *टिंकलर बनाम हिल्डर* ([1]) के केस एवं अन्य मामलों पर भरोसा किया है, जो उस निर्णय का पालन करते हैं या जो टिंकलर के मामले के समान

कारण पर आगे बढ़े हैं, वे निर्णय इस प्रकार हैः *बंकू चन्द्र बोस बनाम मरियम बेगम* ([1ए]); *रामेन्द्र मोहन टैगोर बनाम केशवचन्द्र चंदा* ([2]); *मणिराम बनाम बिहारीदास* ([3]); *एस.के. वीरस्वामी पिल्लई बनाम कल्याणसुंदरम मुदलियार और अन्य* ([4]); *वेंकटरायुडू बनाम चिन्ना* ([5]) *तथा पीयर्स बनाम चैपलिन* ([6])।

अंग्रेजी के दो फैसलों का अभी-अभी उल्लेख किया गया है और कुछ भारतीय निर्णयों में वेंकटरायुडू बनाम चिन्ना (5) पर विचार किया गया। उनसे व्यवहार करते हुए वेंकट सुब्बा राव, जे., ने निम्नलिखित टिप्पणी की हैः

> "इन निर्णयों में अन्तर्निहित सिद्घान्त क्या है ? जब कोई आदेश स्पष्ट रूप से दर्शाता है कि इसके उद्देश्य पूरी तरह से प्रभावी होना है और इसके कई हिस्से एक-दूसरे पर निर्भर है, एक व्यक्ति एक हिस्से को स्वीकार व दूसरे हिस्से को अस्वीकार नहीं कर सकता है। उदाहरण के लिये, यदि न्यायालय निर्देश देता है कि वादी को विरोधी पक्ष की लागत का भुगतान करने पर मुकदमा बहाल किया जायेगा।

(1) (1849) 4 उदाहरण 187: 154 ई.आर. 1176 ।

(1ए) (1915) 21 सी.डब्ल्यू.एन. 232 ।

(2) (1934) आई.एल.आर. 61 कलकत्ता 433 ।

(3) ए.आई.आर. 1955 राज. 145 ।

(4) ए.आई.आर. 1927 मद्रास 1009 ।

(5) ए.आई.आर. 1930 मद्रास 268

(6) (1846) 9 क्यू.बी. 802: 115 ई.आर. 1483।

1 एस.सी.आर.सर्वोच्च न्यायालय रिपोर्टस्361

आदेश में उल्लिखित शर्तों को छोड़कर बाद वाले को लाभ पहुंचाने का कोई ईरादा नहीं है। यदि पक्षकार को लागत प्राप्त होती है, तो उसका कार्य ऐसे आदेश को अपनाने के समान है..... हैल्सबरी के अनुसार यह नियम इस सिद्घान्त का एक अनुप्रयोग है कि "एक व्यक्ति अनुमोदन और खण्डन नहीं कर सकता है।" (13 हैल्सबरी, पैरा 508)..... दूसरे शब्दों में, ऐसे आदेश के तहत् लाभ लेने वाले पक्ष को इसके खिलाफ शिकायत करने की अनुमति देना, विश्वास के उल्लंघन की अनुमति देना होगा।"

अन्य मामलों में अपनाया गया दृष्टिकोण समान तर्क पर आगे बढ़ता है, परन्तु ध्यान देने योग्य है कि इन सभी मामलों में आदेश द्वारा प्रदान किया गया लाभ इन मामलों में शामिल दावे के गुणावगुण के अतिरिक्त कुछ ओर था। हमें यह तय करने के लिये कहा गया है कि क्या अपीलार्थी ने प्री-एम्पशन कीमत वापस लेकर उस डिक्री को अपना लिया है, जिसके खिलाफ उसने पहले ही अपील की थी। अपीलार्थी ने डिक्री को निष्पादित करने की मांग नहीं की और वास्तव में डिक्री ने उसे निष्पादन पर मुकदमा करने का अधिकार नहीं दिया। डिक्री ने केवल वादी/प्रत्यर्थी सं.-1 को अग्र क्रय की कीमत जमा करने का अधिकार प्रदान किया और ऐसा करने पर उसे विक्रेता के स्थान पर विक्रय विलेख में प्रतिस्थापित करने का अधिकार दिया। प्रतिवादी सं.-1 द्वारा जमा किये गये प्री-एम्पशन मूल्य को अपीलार्थी द्वारा वापस प्राप्त करने का कार्य, स्पष्ट रूप से उस डिक्री को अपनाने के समान नहीं हो सकता है, जिसे उसने अपनी अपील में विशेष रूप से चुनौती दी थी।

उपरोक्त निर्णयों में अन्तर्निहित सिद्घान्तों के आधार पर एक व्यक्ति जो किसी आदेश के तहत् लाभ लेता है, गुण-दोष के आधार पर दावा आदेश के उस हिस्से तक अस्वीकार नहीं कर सकता, जो उसके लिये हानिकारक है, क्योंकि आदेश पूरी तरह से प्रभावी होना है। यह कैसे कहा जा सकता है कि एक प्री-एम्पशन मुकदमें एक विक्रेता, जिसके खिलाफ

एक डिक्री पारित की गयी है, वह इसके तहत् कोई "लाभ" लेता है ? इसमें कोई सन्देह नहीं है कि उसे प्री-एम्पशन डिक्री प्रभावी होने से पहले प्री-एम्पशन कीमत का भुगतान करने का अधिकार है, लेकिन प्री-एम्पशन का मूल्य डिक्री के तहत् लाभ के रूप में वर्णित नहीं किया जा सकता। यह केवल विक्रेता को उसकी सम्पत्ति के नुकसान के मुआवजे की प्रकृति है।इसी कारण से उपरोक्त निर्णय का सिद्घान्त ऐसी डिक्री पर लागू नहीं होगा।

हमारे सामने इसी तरह का प्रश्न पंजाब में कई मामलों में और विशेष रूप से *सुन्दर दास बनाम धनपत राय* ([1]) में लालचन्द जे. के निर्णय में उठा था। अदालत ने वहां जो निर्णय दिया, वह यह है कि अपील का अधिकार विक्रेता और मात्र इसलिये जब्त नहीं किया जा सकता, क्योंकि उसने प्री-एम्प्टर द्वारा जमा करायी गयी राशि को वापस ले लिया है, जिसके पक्ष में प्री-एम्पशन की डिक्री पारित की गयी है। विद्वान न्यायाधीश द्वारा *टिंकलर के मामले* ([2]) और *पीयर्स के मामले* ([3]) के निर्णयों का कोई संदर्भ नहीं दिया गया है और इसलिये, यह निर्णय और इसी तरह अन्य निर्णय "श्री चटर्जी द्वारा दिये गये तर्क" पर विचार करने में बहुत कम सहायता मिलती है।

हालांकि, हमें ऐसा लगता है कि कुछ वैधानिक प्रावधान या साम्या के मान्यता प्राप्त सिद्घान्त के अभाव में, किसी को भी अपील के वैधानिक अधिकार सहित उसके कानूनी अधिकारों से वंचित नहीं किया जा सकता।

वाक्यांश "अनुमोदन और प्रत्याख्यान" स्काॅच विधि से उधार लिया गया, जहां इसका उपयोग चुनाव के अंग्रेजी सिद्घान्त में सन्निहित सिद्घान्त को व्यक्त करने के लिये किया जाता है, अर्थात् कोई भी पक्ष एक ही दस्तावेज को स्वीकार या अस्वीकार नहीं कर सकता है (स्क्रूटन, एल.जे. के अनुसार, *वर्सचुर्स क्रीमरीज बनाम हल और नीदरलैंड स्टीमशिप कम्पनी* में) ([4])। हाउस ऑफ़ लाॅर्डस ने *लिसेंडेन बनाम सी.ए.वी. बाॅश लिमिटेड* ([5]) में आगे बताया कि चुनाव का न्यायसंगत सिद्घान्त केवल तभी लागू होता है, जब किसी ब्याज में किसी साधन द्वारा ईनाम के रूप में प्रदान किया जाता है। उस मामले में उन्होंने माना कि नियोक्ता द्वारा जमा किये गये मुआवजे के पैसे को एक कामगार द्वारा वापस लेने से कामगार क्षतिपूर्ति अधिनियम द्वारा उसे प्रदत्त वैधानिक, अपील के अधिकार को नहीं छीना जा सकता है। लाॅर्ड मौघम ने अनुमोदन एवं प्रत्याख्यान के सिद्घान्त की सीमाओको इंगित करने के बाद अपने भाषण के अंत में कहाः

"निश्चित रूप से यह सुझाव नहीं दिया जा सकता है कि दी गई राशि की प्राप्ति में किसी भी तरह से उत्तरदाताओको नुकसान पहुंचाया है। सामान्य अर्थों में न तो रोक और न ही रिहाई का सुझाव दिया गया था। साम्या या न्याय के सिद्घान्त से

(1) (1907) पी.आर. नं. 16,

(2) (1849) 4 उदाहरण 187: 154 ई.आर. 1176 ।

(3) (1846) 9 क्यू.बी. 802: 115 ई.आर. 1483 ।

(4) (1921) 2 के.बी. 608 ।

(5) (1940) ए.सी. 412 ।

1 एस.सी.आर.सर्वोच्च न्यायालय रिपोर्टस्363

कम कुछ भी साबित नहीं हुआ था।

(पी.पी. 421-422)

लार्ॅड राईट, लार्ॅड मौघम और लार्ॅड एटकिन से सहमत थे और उन्होंने सदन के समक्ष अपील पर "सूत्र" लागू करने से इन्कार कर दिया क्योंकि अपीलार्थी के पास चुनने के लिये वैकल्पिक या पारस्परिक रूप से प्रयोग करने योग्य अधिकार होने का कोई सवाल ही नहीं था।

इसमें कोई सन्देह नहीं है, जैसा कि लार्ॅड एटकिन ने बताया है कि एक सम्भावित मामले में किसी निर्णय के तहत् उपचार की प्राप्ति ऐसी परिस्थितियों में की जा सकती है, जिससे अपील को रोका जा सके। परन्तु उन्होंने इस बात पर चर्चा करना आवश्यक नहीं समझा कि किस परिस्थिति में अपील का वैधानिक अधिकार खत्म हो सकता है और उन्होंने यह भी जोड़ाः

> "मैं केवल यह कहने का साहस कर रहा हूं कि जब ऐसे मामलों पर की जब ऐसे मामलों पर विचार करना होगा तो चुनाव के सिद्घान्त को उन मामलों में लागू करना मुश्किल हो सकता है, जहां अस्तित्व में एक मात्र अधिकार निर्णय द्वारा निर्धारित होता हैः और एक मात्र विरोधाभासी अधिकार वैधानिक अधिकार है उस निर्णय को रद्द या संशोधित करने का प्रयास करेंः और सही समाधान *मूर बनाम कनार्ड स्टीमशिप कम्पनी* ([1]) में लार्ॅड ब्लेन्सबर्ग के शब्दों में पाया जा सकता है।"

लार्ॅड ब्लेन्सबर्ग के अनुसार जब किसी आदेश के खिलाफ अपील की गई है और बाद में उसे रद्द कर दिया गया है, तो इस बीच एक उचित आदेश द्वारा "की गई कोई भी शरारत पूर्ववत कर दी जाती है।" इस प्रकार एक मात्र प्रश्न जिस पर विचार किया जाना है कि वह यह है कि क्या अपील करने वाले पक्ष ने ऐसा आचरण किया है कि क्षतिपूर्ति को असम्भव या असमान बना दिया है। इस प्रकार, हाउस ऑफ़ लार्ॅड्स के अनुसार यह उन मामलों के लिये है, जिनमें एक पक्ष ने ऐसा आचरण किया है कि पुनर्स्थापन को असम्भव एवं असमान बना दिया है, जिस सिद्घान्त पर *टिंकलर के मामले* ([2]) में लिया निर्णय आधारित है, लागू हो सकता है। इस

मामले और इसी तरह के तीन अन्य मामलों का जिक्र करते हुए लार्ॅड एटकिन ने कहाः

> "किसी भी मामले में वे सभी अपीलों पर लागू होने वाले ऐसे व्यापक पहुंच वाले सिद्घान्त के लिये बहुत कमजोर आधार बनाते हैं, और यदि वह ऐसा परिणाम देता है, तो उसका पालन नहीं करना चाहिये।"

लिसेन्डेन के मामले ([3]) में इस प्रकार स्पष्ट शब्दों में इंगित

(1) 28 बी.डब्ल्यू.सी.सी. 162 ।

(2) (1849) 4 उदाहरण 187: 154 ई.आर. 1176 ।

(3) (1940) ए.सी. 412 ।

किया गया है कि स्काॅच सिद्घान्त की सीमाएं क्या है। यदि इस मामले में जो निर्धारित किया गया था, वह इंग्लैंड के सर्वोच्च न्यायिक न्यायाधिकरण के अनुसार सामान्य कानून है, तो यह केवल वही कानून है, जिसे इस देश की अदालतें प्राकृतिक न्याय के सिद्घान्तों पर लागू कर सकती है, ना कि जो कुछ पहले के निर्णयों में सामान्य कानून माना जाता था।

हमें ऐसा लगता है कि अपील के वैधानिक अधिकार को समाप्त नहीं माना जा सकता, क्योंकि अपीलकर्ता ने इस बीच डिक्री के तहत् प्रतिद्वंद्वी द्वारा किये गये किसी कार्य का पालन किया है या उसका राईट है और *टिंकलर के मामले* ([1]) में नियम को वर्तमान जैसे मामले को आगे बढ़ाने का कोई आैचित्य नहीं है। हमारे निर्णय में यह केवल उन मामलों तक सीमित होना चाहिये जहां किसी व्यक्ति ने किसी आदेश के तहत् दावे में गुण-दोष के आधार पर लाभ लेने का चुनाव किया, जिस लाभ का वह आदेश के अलावा हकदार नहीं हो सकता था। यहां अपीलार्थी ने प्री-एम्पशन कीमत वापस लेकर गुणावगुण के मुकाबलें कोई लाभ नहीं उठाया है। इसके अलावा यह मामला ऐसा नहीं है जहां पुनर्स्थापन असम्भव या असमान है। आगे हमें ऐसा लगता है कि दो अधिकारों के बीच चयन का अस्तित्व भी अनुमोदन एवं प्रत्याख्यान के सिद्घान्त की प्रयोज्यता के लिए आवश्यक शर्तों में से एक है। हमारे सामने आये मामले में अपीलार्थी के सामने ऐसा कोई विकल्प नहीं था और इसलिये, प्री-एम्पशन कीमत वापस लेने का उसका कार्य उसे अपनी अपील जारी रखने से नहीं रोक सकता है। इसलिये, हम प्रारम्भिक आपत्ति को खारिज करते हैं। अपील को अब गुण-दोष के आधार पर सुनवाई के लिये निर्धारित किया जावेगा। इस सुनवाई का खर्च अपील का खर्च होगा।

सरकार, जे.- मुझे ऐसा लगता है कि इस अपील की पोषणीयता पर आपत्ति सफल होनी चाहिये। अपीलार्थी डिक्री का लाभ उठाकर अब इसकी वैधता को चुनौती दे सकता है।

यह डिक्री प्रतिवादी बैजनाथ, जिसे मैं प्रतिवादी कहूंगा, द्वारा मई, 1951 में लाये गये प्री-एम्पशन के एक मुकदमें में अपीलार्थी के खिलाफ पारित की गई थी, कुछ सम्पत्ति के क्रेता और विक्रेताओ अन्य उत्तरदाताओके खिलाफ, जो इस अपील में उपस्थित नहीं हुए है। विचारण न्यायालय द्वारा मुकदमा खारिज कर दिया गया, परन्तु

(1) (1849) 4 उदाहरण 187: 154 ई.आर. 1176 ।

अपील पर न्यायिक आयुक्त, विंध्य प्रदश द्वारा 24 मार्च, 1952 को इसका फैसला सुनाया गया। विद्वान न्यायिक आयुक्त ने माना कि प्रतिवादी के पास प्री-एम्पशन का अधिकार था और सम्पत्ति के अग्र क्रय के लिये उसके द्वारा अपीलकर्ता को भुगतान की जाने वाली खरीद राशि 3,000/-रूपये थे और प्रतिवादी को यह राशि 4 माह में अदालत में भुगतान करने का निर्देश दिया गया। प्रतिवादी ने इस राशि का अदालत में विधिवत भुगतान किया। अपीलार्थी ने विद्वान न्यायिक आयुक्त के फैसले के खिलाफ अपील करने के लिये इस न्यायालय से विशेष अनुमति प्राप्त की और उसके बाद प्रतिवादी द्वारा भुगतान की गई राशि अदालत से वापस ले ली। वर्तमान अपील इसी अनुमति के तहत् उत्पन्न होती है।

जो डिक्री तैयार की गयी थी उसमें केवल यह कहा गया था कि अपील को लागत के साथ स्वीकार किया गया था और अनुग्रह की अवधि 4 महीने थी। दीवानी प्रक्रिया संहिता के आदेश 20 नियम 14 के मद्देनजर डिक्री, अपनी आैपचारिकता के बावजूद इस रूप में समझी जानी चाहिये कि प्रतिवादी द्वारा निर्धारित समय के भीतर अदालत में खरीद के पैसे के रूप में देय राशि का भुगतान करने पर, अपीलार्थी सम्पत्ति का कब्जा दे देगा, उसे और उस पर उसका हक अदालत में भुगतान की तारीख से अर्जित माना जाएगा और ऐसे भुगतान में चूक होने पर मुकदमा लागत के साथ खारिज कर दिया जाएगा।

अब, इसमें जरा भी सन्देह नहीं है कि अपीलार्थी ने न्यायालय से धन प्राप्त करते हुए, पूरी तरह से अपनी स्वतन्त्र पसन्द से काम किया था; उसे किसी भी तरह से ऐसा करने के लिये मजबूर नहीं किया गया था, ना ही प्रतिवादी के किसी भी कृत्य से उसे इसके लिये प्रेरित किया गया था। प्रतिवादी ने डिक्री को क्रियान्वित करने और अपीलार्थी से सम्पत्ति का कब्जा प्राप्त करने के लिये कुछ नहीं किया। यदि अपीलार्थी चाहता तो उसे पैसे निकालने की आवश्यकता नहीं थी और उसके हित पर कोई प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ता। 7 जून, 1950 को सम्पत्ति खरीदने के बाद से उनका उस पर हमेशा से कब्जा रहा है और वह अदालत से 14 नवम्बर, 1953 को राशि वापस प्राप्त करने से तब से इस पैसे का उपभोग भी कर रहा है।

मुझे ऐसा लगता है कि इन तथ्यों पर अपीलार्थी अपील के साथ आगे नहीं बढ़ सकता है। उसे आचरण के असंगत कार्य करने की अनुमति नहीं दी जा सकती है। पैसे निकालकर उसने अपनी स्वतन्त्र पसन्द,से डिक्री को अपनाया है और इसलिये उसे इसकी वैधता को चुनौती देने से रोका जाना चाहिये। उसे धन पर कोई अधिकार था, सिवाय इसके कि जो आदेश दिया गया था। उस अधिकार का प्रयोग करने के बाद उसे यह कहते हुए नहीं सुना जा सकता कि डिक्री अमान्य थी और इसलिये, जिस अधिकार का उन्होंने प्रयोग किया था वह कभी अस्तित्व में नहीं था।

यह नियम इंग्लैंड के साथ-साथ हमारे देश में भी अच्छी तरह से स्थापित है, कि एक वादी को आचरण के ऐसे असंगत कार्य की अनुमति नहीं है और जहां तक मुझे जानकारी है, कभी भी इसे छोड़ा नहीं गया है। 1849 की शुरूआत में *टिंकलर बनाम हिल्डर* ([1]) में, पोलक, सी.बी. ने एक आदेश को रद्द करने के नियम से निपटने में कहा, "इसे केवल इस संकीर्ण आधार पर खारिज किया जा सकता है, कि इस मामले की परिस्थितियों में, वास्तव में प्रश्नगत आदेश को रद्द करने के लिये आवेदन करने वाले पक्ष ने इसके तहत् कुछ लेकर इसे अपनाया है।" *किंग बनाम साईमंड्स* ([2]) और *पीयर्स बनाम चैपलिन* ([3]) के तर्क की एक ही पंक्ति अपनाई गई थी। यह सच है कि, मामलों में आदेशों को इसलिये अपनाया गया, क्योंकि लागत, जिसके भुगतान के लिये उन्होंने प्रावधान किया था,

प्राप्त हो गयी थी। यह भी सच है कि आदेश ऐसे नहीं थे कि जिन पक्षों को लागत का भुगतान करने का निर्देश दिया गया था, वे अधिकार के रूप में हकदार थे। परन्तु मुझे नहीं लगता कि इन सब से कोई फर्क पड़ता है। प्रश्न यह है कि क्या परिस्थितियां ऐसी थी कि किसी आदेश के तहत् लाभ स्वीकार करना और फिर उसे चुनौती देना, असंगत आचरण होगा ? मुझे यह मान लेना चाहिये कि इस प्रयोजन के लिये लागत उतना ही लाभप्रद है जितना कि आदेश द्वारा दी गई कोई अन्य चीज है। इसी तरह जब आदेश विवेकाधीन थे या ऐसे थे जिनके लिये कोई अधिकार पूर्व डेबिटो जस्टिटिया नहीं था, तो यह कहने का कोई कारण नहीं होगा कि यदि उनके तहत् लाभ स्वीकार किये जाने के बाद उन्हें चुनौती दी गई, तो कोई असंगतता नहीं हो सकती है। ऐसी असंगतता का निर्णय करने के लिये, मैं यह पता लगाने में असमर्थ हूं कि आदेश की विवेकाधीन प्रकृति में कोई भौतिकता है।

हाल ही के दिनाें में हमें *डेक्सटर्स एल.डी. बनाम हिल क्रेस्ट ऑयल कम्पनी लिमिटेड* ([4]) का मामला मिलता है। वहां एक व्यक्ति, जिसने एक वाणिज्यिक मध्यस्थता में दिये गये एक अवार्ड के तहत् धन राशि ली थी, जिसके अनुसार

(1) (1849) 4 उदाहरण 187: 154 ई.आर. 1176 ।

(2) (1845) 7 क्यू.बी. 289 ।

(3) (1846) 9 क्यू.बी. 802 ।

(4) (1926) 1 के.बी. 348 ।

अदालत में बताये गये एक विशेष मामले में फैसला दर्ज किया गया था, जिसे उस फैसले के खिलाफ अपील करने से रोक दिया गया था। यहां यह ध्यान दिया जायेगा कि यह मामला ऐसा नहीं था, जिसमें किसी आदेश को उसके द्वारा दी गई लागत की प्राप्ति के कारण अपनाया गया था, बल्कि उस धन राशि की प्राप्ति के कारण था, जिसका दावा किया गया था और अवार्ड द्वारा दिया गया था। स्क्रूटन, एल.जे., ने देखा, (पृष्ठ 358)

"यह सुनकर मुझे आश्चर्य होता है कि यह तर्क दिया गया कि एक व्यक्ति कह सकता है कि निर्णय गलत है और साथ ही निर्णय के तहत् भुगतान को सही मानते हुए स्वीकार करता है।" इवांस बनाम बार्टलाम (1) में किलोवेन के लार्ॅड रसेल द्वारा कहा गया कथन पढ़कर समाप्त करूंगा कि "एक व्यक्ति, जिसने एक निर्णय द्वारा उसे दिये गये लाभ को स्वीकार कर लिया है, वह उस निर्णय की अमान्यता का आरोप नहीं लगा सकता है, जिसने लाभ प्रदान किया है।"

हमारे देश में इस मुद्दे से संबंधित मामलों में से *मणिलाल गुजराती बनाम हरेन्द्र लाल* ([2]), *बंकू चन्द्र बोस बनाम मरियम बेगम* ([3]), *हरिबक्श देवड़ा बनाम जौहूरमल भोटोरिया* ([4]) और *वेंकटरायुडू बनाम चिन्ना* ([5]) का उल्लेख कर सकता हूं। *हरिबक्श देवड़ा के मामले* ([4]) एक बंधक के मोचन के मुकदमें में डिक्री के खिलाफ अपील थी। वादी ने विचारण न्यायालय द्वारा पारित डिक्री के तहत् बंधक सम्पत्ति के कब्जे और आय की प्राप्ति के गिरवीदार से देय राशि को स्वीकार कर लिया था और उसके बाद अपील दायर की थी कि वह और अधिक का हकदार था। रैंकिन सी.जे., जिन्होंने न्यायालय का फैसला सुनाया, ने माना कि अपीलार्थी के आचरण में कोई असंगतता नहीं थी और नियम 1 पर इतने लम्बे समय से चर्चा हो रही थी, इसलिये कोई आवेदन नहीं हुआ। यह बिल्कुल सही था। अपीलार्थी ने पारित डिक्री को स्वीकार कर लिया और अपील में इसकी सत्यता को चुनौती नहीं दी थी, बल्कि केवल यह तर्क दिया था कि यह बहुत आगे तक नहीं गया था। जैसा कि कहा गया है, वह गर्म या ठण्डा नहीं बह रहा था, बल्कि केवल गर्म बह रहा थाः *मिल्स बनाम डकवर्थ* ([6]) में ग्रियर एल.जे. देखें।

किंग बनाम साईमन्स ([7]), *पीयर्स बनाम चैपलिन* ([8]) और *टिंकलर बनाम हिल्डर* ([9]) का जिक्र करते हुए, जो मेरे द्वारा पूर्व में उर्द्घत किया गया था,

(1) (1937) ए.सी. 473, 483 ।

(2) (1910) 12 सी.एल.जे. 556 ।

(3) (1916) 21 सी.डब्ल्यू.एन. 232 ।

(4) (1929) 33 सी.डब्ल्यू.एन 711 ।

(5) (1930) 58 एम.एल.जे. 137 ।

(6) (1938) 1 सभी ई.आर. 318, 321 ।

(7) (1845) 7 क्यू.बी. 289 ।

(8) (1846) 9 क्यू.बी. 802 ।

(9) (1849) 4 उदाहरण 187: 154 ई.आर. 1176 ।

रैंकिग सी.जे., ने कहा (पृष्ठ 714) कि वे "आधार को छोड़कर स्पष्ट रूप से अप्रायोज्य है कि प्रतिवादी उस विपक्षी पक्ष को, जिसके कहने पर आदेश दिया गया था, पर लगाये गये किसी नियम या शर्त का लाभ प्राप्त करने के बाद आदेश को चुनौती देना चाहता है।" उनका विचार था कि यह आधार उस मामले में मौजूद नहीं था, जो उनके सामने था।

रैंकिन सी.जे., ने एक अन्य पुराने अंग्रेजी मामले का भी उल्लेख किया, जिसका नाम *केनार्ड बनाम हैरिस* ([1]) है। वहां एक मध्यस्थ के पुरस्कार को रद्द करने के नियम को तब खारिज कर दिया गया, जब यह

दिखाया गया कि जिस पक्ष ने नियम प्राप्त किया था। उसने सन्दर्भ एवं अवार्ड की लागत स्वीकार कर ली थी। रैंकिन सी.जे., ने इस मामले के सन्दर्भ में कहा कि (पृष्ठ 713) " एक व्यक्ति, जो किसी अवार्ड के तहत् भुगतान या किसी अवार्ड और उसे दी गयी किसी अन्य राशि को स्वीकार करता है, उसे न्यायालय से अवार्ड को रद्द करने के लिये कहने से वंचित माना जाता है।" हालांकि उन्होंने यह भी कहा कि "एक अवार्ड तब तक बुरा है, जब तक की वह प्रस्तुत पूरे मामले से संबंधित न हो और प्रथम दृष्ट्या इसे केवल आंशिक रूप से रद्द नहीं किया जा सकता। यह हो सकता है कि रैंकिन सी.जे., एक अन्तर कर रहे थे, जो स्पष्ट रूप से सही है, एक अवार्ड के बीच, जिसे केवल समग्र रूप से अलग किया जा सकता है क्योंकि यह एक और अविभाज्य और एक निर्णय, जो अलग-अलग भागों में हो सकता है, इस मामले में एक पक्ष द्वारा एक भाग को अपनाने, दूसरे भाग को चुनौती देने से नहीं रोकेगा, जो स्वतन्त्र था। रैंकिन सी.जे., यह नहीं सोचा था और यदि मैं सम्मान के साथ ऐसा कह सकता हूं, तो सही ढंग से, कि *केनार्ड बनाम हैरिस* ([1]) के सिद्घान्त का उनके सामने मामले के तथ्यों पर कोई आवेदन किया था, क्योंकि वहां निर्णय के किसी हिस्से को अपील द्वारा चुनौती देने की मांग नहीं की गयी थी, शायद एक स्वतन्त्र भाग को छोड़कर, जो निहितार्थ से बड़ी राशि के लिये अपीलार्थी के दावे को खारिज कर देता है।

वेंकटरायुड्र के मामले ([2]), में वेंकटसुब्बा राव जे. ने विभिन्न मामलों पर चर्चा करने के बाद, जिनमें से कुछ का मैंने उल्लेख किया है, कहा (पृष्ठ 141) “इन निर्णयों में अन्तर्निहित सिद्घान्त क्या है ? जब कोई आदेश स्पष्ट रूप से दर्शाता है कि इसका उद्देश्य पूरी तरह से प्रभावी होना है और इसके कई हिस्से एक-दूसरे पर निर्भर है,

(1) (1824) 2 बी. एंड सी. 80; 107 ई.आर. 580 ।

(2) (1930) 58 एम.एल.जे. 137 ।

कोई व्यक्ति एक भाग को स्वीकार तथा दूसरे भाग को अस्वीकार नहीं कर सकता है।"

यह मुझे सन्देह से परे लगता है कि इन मामलों का सिद्घान्त वर्तमान अपील के तथ्यों पर लागू होता है। यहां हमारे पास एक डिक्री है, जो एक एवं अविभाज्य है। इसका प्रभाव यह है कि प्रतिवादी द्वारा अदालत में धन राशि का भुगतान करने पर वह सम्पत्ति का हकदार होगा और उस पर कब्जा प्राप्त करेगा और अपीलार्थी धन राशि वापस प्राप्त करने का हकदार होगा। अपीलार्थी को डिक्री से स्वतन्त्र रूप से धन राशि का कोई अधिकार नहीं है; उसे प्रतिवादी को कीमत के भुगतान पर उससे सम्पत्ति क्रय करने के लिये विश्वास करने का कोई अधिकार नहीं था। वास्तव में अपीलार्थी यह तर्क दे रहा था कि प्रतिवादी कीमत चुकाकर उससे

सम्पत्ति खरीदने का हकदार नहीं था। अपीलार्थी केवल इस आधार पर धन निकाल सकता था कि डिक्री ठीक से पारित की गयी थी। इसलिये, धन राशि प्राप्त कर, उसने इसकी शुद्घता को अपनाया और अब यह नहीं कह सकते कि यह गलत है। मुझे ऐसा लगता है कि *वेंकटरायुडू के मामले* ([1]) में, वेंकटसुब्बा राव जे., का अवलोकन (पृष्ठ 141) की "किसी एक पक्ष को, जो इस तरह के आदेश के तहत् लाभ लेता है, उसके खिलाफ शिकायत की अनुमति देना, विश्वास के उल्लंघन की अनुमति देना होगा।" अपीलार्थी के आचरण पर पूरी तरह से लागू होगा। *हरिबक्श देवड़ा का मामला* ([2]), *किंग बनाम साईमंडस्* ([3]) *पीयर्स बनाम चैपलिन* ([4]) *टिंकलर बनाम हिल्डर* ([5]) के मामले में रैंकिन सी.जे. की टिप्पणियां भी ऐसी ही होगी। वर्तमान एक ऐसा मामला है, जहां अपीलार्थी किसी अवधि या शर्त के लाभ को स्वीकार करने के बाद एक आदेश को चुनौती देना चाह रहा था, अर्थात् अदालत में धन राशि का भुगतान करना, जो प्रतिवादी पर अधिरोपित किया गया था, जिसके कहने पर आदेश दिया गया था, कि धन राशि भुगतान करने का दायित्व प्रतिवादी पर लगाया गया एक नियम या शर्त थी, जो स्पष्ट है, क्योंकि डिक्री में प्रावधान किया गया था कि यदि धन राशि का भुगतान नहीं किया गया तो मुकदमा लागत के साथ खारिज कर दिया जायेगा। पुनः वर्तमान मामले में निर्णय एक अवार्ड की तरह है, क्योंकि यह एक सम्पूर्ण है और इसे भागों में अलग नहीं किया जा सकता। इसलिये

(1) (1930) 58 एम.एल.जे. 137 ।

(2) (1929) 33 सी.डब्ल्यू.एन 711 ।

(3) (1845) 7 क्यू.बी. 289 ।

(4) (1846) 9 क्यू.बी. 802 ।

(5) (1849) 4 उदाहरण 187: 154 ई.आर. 1176 ।

रैंकिन सी.जे., ने *केनार्ड बनाम हैरिस* ([1]) के संबंध में कहा, जहां एक अवार्ड को चालू किया था, अर्थात् एक व्यक्ति जो किसी अवार्ड द्वारा प्रदान की गयी लागत या धन राशि को स्वीकार करता है, उसे अलग रखने के लिये नहीं कह सकता है, यह भी लागू होगा। मुझे यह कल्पना करना असम्भव लगता है कि इस निर्णय में कई भाग शामिल है या ऐसे भाग अलग किये जा सकते है।

विद्वान अधिवक्ता अपीलार्थी उनके तर्क के समर्थन में हमें केवल एक मामले का सन्दर्भ करने में सक्षम थे कि अपील को आगे बढ़ाया जा सकता है और यह *सुन्दर दास बनाम धनपत राय* ([2]) था। यह भी प्री-एम्पशन का मामला था। हालांकि वादी, जिसने अपने पक्ष में प्री-एम्पशन के लिये डिक्री प्राप्त की थी, ने उस डिक्री को निष्पादित किया था और संबंधित सम्पत्ति का कब्जा प्राप्त किया था। प्रतिवादी ने डिक्री के खिलाफ अपील की, परन्तु प्रथम अपीलीय न्यायालय में असफल रहा। इसके बाद

उसने लाहौर के मुख्य न्यायालय में अपील की और जब वहां अपील लम्बित थी, तो विचारण न्यायालय के आदेश के तहत् वादी द्वारा अदालत में भुगतान की गई खरीद राशि वापस ले ली गयी। मुख्य न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि यह प्रतिवादी को उसके समक्ष अपील के साथ आगे बढ़ने से नहीं रोकता है। उस मामले के तथ्य हमारे सामने आये तथ्यों से काफी अलग है। यह कहा जा सकता है कि प्रतिवादी को सम्पत्ति छोड़ने के लिये मजबूर किये गये, से न्यायालय से धन राशि वापस लेना उचित था और ऐसी परिस्थितियों में धन राशि वापस लेना डिक्री को अपनाने के समान नहीं था। यह वर्तमान मामले में नहीं कहा जा सकता। क्या तथ्यों के आधार पर *सुन्दर दास के मामले* ([2]) का निर्णय सही था या नहीं, यह ऐसा मामला नहीं है, जिस पर मुझे लगता है कि मुझे कोई राय व्यक्त करने के लिये कहा गया। यदि फिर भी उस मामले का उद्देश्य एक ऐसा सिद्घान्त निर्धारित करना है, जो अपीलार्थी को इस अपील के साथ आगे बढ़ने में मामले के तथ्यों पर अपीलार्थी को अधिकार देगा, तो मैं इससे सहमत होने में असमर्थ हूं। तब इस मुद्दे पर सभी प्राधिकारियों के साथ टकराव होगा और इनमें से किसी पर भी उस मामले के फैसले में ध्यान नहीं दिया गया था। मुझे नहीं लगता कि *सुन्दर दास का मामला* ([2]) अदालतों द्वारा समान रूप से पालन किये जाने वाले सिद्घान्त से अलग होने के लिये पर्याप्त अधिकार रखता है।

(1) (1824) 2 बी. एण्ड सी 801 : 107 ई.आर. 580 ।

(2) 1907 पी.आर. नं. 16 ।

हालांकि मेरा निष्कर्ष निकालने से पहले, *लिसेंडेन बनाम सी.ए.वी. बाॅश लिमिटेड* ([1]), के मामले का तुलनात्मक रूप से हाल के मामले में उल्लेख करना आवश्यक है। यह एक ऐसा मामला था, जिसमें एक कामगार जिसे एक निश्चित तारीख तक आंशिक अक्षमता के लिये मुआवजा दिया गया था, उसने इस प्रकार दिये गये मुआवजे को स्वीकार कर लिया और उसके बाद एक अपील दायर की, जिसमें दावा किया गया कि उसे उस तारीख से परे मुआवजा दिया जाना चाहिये था और जब तक कि वह अक्षम नहीं हो जाता। अपीलीय न्यायालय उसके द्वारा पूर्व में *जाॅनसन बनाम न्यूटन फायर एक्सटिंग्विशर कम्पनी* ([2]) के मामले में दिये गये निर्णय से स्वयं को बाध्य महसूस करते हुए, कुछ अनिच्छा से यह माना था कि अवार्ड के तहत् धन राशि स्वीकार करने वाला कामगार अपील के माध्यम से चुनौती नहीं दे सकता। *जाॅनसन के मामले* ([2]) में, ऐसा प्रकट होता है कि एक कामगार एक अवार्ड के एक हिस्से को स्वीकार नहीं कर सकता और उसके लिये दूसरे हिस्से में संशोधन करने का दावा करना, अवार्ड को "अनुमोदन और प्रत्याख्यान" करने का प्रयास होगा और इसकी अनुमति नहीं दी जा सकती थी। *लिसेंडेन के मामले* ([1]) में हाउस ऑफ़ लाॅर्ड्स ने माना कि *जाॅनसन के मामले* ([2]) का निर्णय गलत तरीके से

किया गया था और इससे पहले कि कामगार अपील के साथ आगे बढ़ने का हकदार था। इस दृष्टिकोण का कारण यह था कि कामगार को, जो कुछ देय था, उसकी स्वीकृति उसे कुछ और राहत के लिये अपील करने से नहीं रोकती है। इसलिये मामला वैसा ही था जैसा रैंकिन सी.जे. के समक्ष *हरिबक्श देवड़ा बनाम जौहुरमल भोटोरिया* ([3]) में था, हाउस ऑफ़ लाॅर्ड्स के निर्णय का सार यह था कि अपील और अवार्ड को अपनाने के बीच कोई असंगतता नहीं थी। हालांकि अभी हमारे सामने मौजूद मामले में ऐसा नहीं कहा जा सकता है।

हाउस ऑफ़ लाॅर्ड्स ने यह भी बताया कि अपीलीय न्यायालय ने "अनुमोदन और खण्डन" के खिलाफ सिद्घान्त को गलत समझा था। ऐसा कहा जाता था कि यह स्काॅटिश कानून का एक सिद्घान्त था जिसे इंग्लैंड में उच्चाधिकारियों ने चुनाव के न्यायसंगत सिद्घान्त के बराबर माना था। यह देखा गया कि न्यायसंगत सिद्घान्त किसी उपकरण (दस्तावेज) के निष्पादक के इरादे पर अपने आवेदन के लिये निर्भर करता है और इसलिये

(1) (1940) ए.सी. 412 ।

(2) (1913) 2 के.बी. 111

(3) (1929) 33 सी.डब्ल्यू.एन 711 ।

इस तरह के मामलों पर लागू नहीं था। एक हाउस ऑफ़ लार्ड्स के पास पहले से था। यह भी बताया गया कि चुनाव के सामान्य कानून सिद्घान्त का कोई आवेदन नहीं था, यह दो अधिकारों या उपचारों के अस्तित्व पर निर्भर करता था, जिनमें से अकेले एक को चुना जा सकता था और अपील के मामले में कोई दो अधिकार या उपचार नहीं थे।

मुझे नहीं लगता कि "अनुमोदन और खण्डन" के विरूद्घ सिद्घान्त पर हाउस ऑफ़ लार्ड्स की टिप्पणियां हमारे समक्ष मौजूद प्रश्न को प्रभावित करती है। सभी विद्वान न्यायाधीशगण, जिन्होंने मामले में राय दी, जिसमें लार्ड एटकिन भी शामिल थे, जिन्होंने स्वयं को कुछ आपत्तियों के साथ व्यक्त किया था, ने इस स्थिति को स्वीकार किया कि एक वादी निर्णय या अवार्ड के बाद अपने आचरण के कारण अपील का अधिकार खो सकता है, ऐसे आचरण से वह अपील करने से रोका जा सकता है, साम्या या कानून में उसके अपील के अधिकार को मुक्त रखने वाला माना जा सकता हैः देखे पृष्ठ 420, 429, 430 और 434 । *लिसेंडेन का मामला* ([1]), इसलिये मेरे विचार से इस सिद्घान्त पर कोई सन्देह नहीं है कि एक वादी को अपील के साथ आगे बढ़ने से रोका जा सकता है, यदि वह (जिस डिक्री को अपील के माध्यम से चुनौती दी गयी थी) डिक्री उसके संबंध में उसके पिछले आचरण से असंगत होगा। मुझे ऐसा लगता है कि इंग्लैंड की अदालतों ने *लिसेंडेन के मामले* ([1]) में भी यही दृष्टिकोण अपनाया है।

बैक्सटर बनाम एकर्सली ([2]) में अपीलीय न्यायालय ने *डेक्सटर के मामले* ([3]) में निर्धारित सिद्घान्त को स्पष्ट रूप से अनुमोदित किया। *बैंक डेस मार्चैंड्स डी मोस्को बनाम किंडरस्ले* ([4]) एवरशेड, एम.आर., ने वाक्यांशों "अनुमोदन और खण्डन" और "बहती गर्मी और बहती हुई ठंड" का उल्लेख करते हुए पृष्ठ संख्या 119 पर कहा, "इन वाक्यांशों को व्यक्त करने के लिये लिया जाना चाहिये, सबसे पहले, कि प्रश्न में पार्टी को एक ऐसे चुनाव के रूप में माना जाना चाहिये जिससे वह पीछे नहीं हट सकता है और दूसरा, उसे माना नहीं जायेगा, कम से कम ऐसे मामले में वर्तमान के रूप में, इस प्रकार निर्वाचित होने के रूप में जब तक कि झूंठ ने उस आचरण के तहत् या उससे उत्पन्न कोई लाभ नहीं उठाया है, जिसे उसने पहली बार अपनाया है और जिसके साथ उसकी वर्तमान कार्यवाही असंगत है।" यह देखा जायेगा कि इन दोनों मामलों का निर्णय *लिसेंडेन के मामले* ([1]) के बाद किया गया था।

ये सभी प्राधिकारी मेरे दिमाग में कोई सन्देह नहीं छोड़ते हैं कि असंगत आचरण को रोकने वाला सिद्घान्त दृढ़ता से

(1) (1940) ए.सी. 412।

(2) (1950) 1 के.बी. 480 ।

(3) (1926) 1 के.बी. 348 ।

(4) (1951) 1 अध्याय 112 ।

स्थापित है। मैं सूचता हूं, कि पहले बताये गये कारणों से कि नियम वर्तमान मामले में उचित रूप से लागू है और अपीलार्थी को अपील के साथ आगे बढ़ने की अनुमति नहीं दी जा सकती। हालांकि, मैं यह स्पष्ट करना चाहता हूं कि नियम की प्रयोज्यता प्रत्येक मामले के तथ्यों पर निर्भर करेगी; यह इस बात पर निर्भर करेगा कि क्या वास्तविक असंगतता रही है। मै।ने पाया कि वहां वर्तमान मामले में स्वीकार किया गया है और अपील के अभियोजन के परिणामस्वरूप अपीलार्थी का आचरण असंगत हो जायेगा। बस इतना ही मैं तय करता हूं।

मामला छोड़ने से पहले, मुझे लगता है कि मुझे यह देखना चाहिये कि इस तथ्य से कि अपीलार्थी ने इस न्यायालय से अनुमति प्राप्त करने के बाद धन राशि निकाल ली थी, सिद्घान्त की प्रयोज्यता पर कोई फर्क नहीं पड़ता है। इस तरह की वापसी से ही उसने डिक्री को अपनाया है और उसके बाद उसे अपील के साथ आगे बढ़ने से रोक दिया गया। वर्तमान मामले में उतनी ही असंगतता है जितनी की होती, यदि अपीलार्थी ने अनुमति प्राप्त करने से पहले धन राशि निकाल ली होती।

इन कारणों से मैं अपील को लागत सहित खारिज कर दूंगा।

न्यायालय द्वाराः बहुमत के निर्णयानुसार, प्रारम्भिक आपत्ति को निर्णयों के अनुसार, प्रारम्भिक आपत्ति को खारिज कर दिया गया है। अपील को अब गुण-दोष के आधार पर सुनवाई के लिये निर्धारित किया जायेगा।

प्रारम्भिक आपत्ति खारिज

यह अनुवाद आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस टूल 'सुवास' की सहायता से अनुवादक **प्रशान्त शर्मा, न्यायिक अधिकारी** द्वारा किया गया है।

अस्वीकरणः- यह निर्णय पक्षकार को उसकी भाषा में समझाने के सीमित उपयोग के लिये स्थानीय भाषा में अनुवादित किया गया है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये इसका उपयोग नहीं किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और अधिकारिक उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंगे्रजी संस्करण ही प्रमाणिक होगा और निष्पादन और कार्यान्वयन के उद्देश्य से भी अंग्रेजी संस्करण ही मान्य होगा।